योग का विज्ञानीय स्वरूप

☐ डॉ० वीरेन्द्र शेखावत

योग या आत्मविद्या प्राचीनतम भारतीय विद्या है जो अन्य प्राचीन संस्कृतियों के इतिहास में उपलब्ध नहीं होती। लेकिन भारत में यह औपनिषदिक, बौद्ध, जैन, और शैव सिद्धान्तों में अत्यन्त विकसित रूप में उपलब्ध है और इन सभी ने इसमें नवीन अन्वेषण करने और इसका यौक्तिक विकास करने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। यद्यपि बौद्ध नैरात्म्यवादी हैं, लेकिन इसके बावजूद वहाँ स्व-स्वरूपउपलब्धि विज्ञान के रूप में इसका विकास हुआ। इन विभिन्न सिद्धान्तों में मौलिक सिद्धान्तीय और पद्धतिविषयक भेद होते हुए भी योगविज्ञान के मूल सिद्धान्त समान हैं और इसमें एक नाभिकीय एकत्व है जो इसको एक सार्वभौमिक विज्ञान के रूप में स्थापित करता है। इस प्रकार हमें यह एक सर्वमान्य विज्ञान के रूप में उपलब्ध होता है जो तत्त्वमीमांसासम्बन्धी मतभेदों के बावजूद अनुभवपरीक्षा में एक व सम है। वे कौन से मूल सिद्धान्त हैं जो बौद्ध, जैन आदि योगविज्ञानों में समान रूप से मान्य हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ने के लिए हमें योग के मानसिकीय विश्लेषण और अभ्यास की पद्धति पर विचार करना चाहिए। योग एक ऐसी मानसिक अवस्था को प्राप्त करता है जिसमें स्मृति का विकास, इन्द्रियों व मन पर नियन्त्रण, बुद्धि की शुद्धि, तर्कशक्ति योग्यता, एकाग्रता तथा आन्तरिक तल्लीनता आदि भी उपलब्धि होती है। विभिन्न सिद्धान्तों में इनको विभिन्न नामों से अभिव्यक्त किया गया है। इसी प्रकार इन मानसिकीय अवस्थाओं को प्राप्त करने के लिए भोजन का नियन्त्रण, तपश्चर्या, श्वास-प्रश्वास के व्यायाम, देह के व्यायाम, एकाग्रता का अभ्यास, ब्रह्मचर्य पालन, वैराग्य आदि का अभ्यास करना अनिवार्य है जो पद्धतिविचार के अन्तर्गत आते हैं। इन विभिन्न पद्धतियों को भी भिन्न सिद्धान्तों में भिन्न नाम दिए गए हैं। इन दोनों ही क्षेत्रों में पतञ्जलि का योगसूत्र सर्वोपरि है क्योंकि उसमें मानसिकीय विश्लेषण और पद्धति पर बहुत ही सुन्दर और सुव्यवस्थित रूप से विचार किया गया है। वहाँ विभिन्न सिद्धान्तों—विशेषकर बौद्ध और जैन से भी सामंजस्य बैठाने का प्रयास किया गया प्रतीत होता है। आधुनिक शरीर-वैज्ञानिकों ने योगाभ्यास से उपलब्ध विभिन्न दैहिक क्रियाओं और परिणामों का सूक्ष्म अध्ययन किया है और ऐसा उन्होंने पातञ्जलि योगसूत्र को आधार मान कर ही किया है। अतः सिद्धान्तों की समानता की खोज में पातञ्जलि के मूल प्रत्ययों को केन्द्र में रखते हुए विचार करना लाभप्रद होगा।

२. मानसिकीय विश्लेषण के संदर्भ में पातञ्जलि का कथन है कि सामान्य मानव अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, व अभिनिवेश क्लेशों से पीड़ित रहता है। इन क्लेशों के फल-स्वरूप ही अन्य जटिल विक्षेप जैसे व्याधि, स्त्यान, अविरति, भ्रान्तिदर्शन आदि होते हैं जिनसे जनित दुःख मानव भोगता है। बौद्धों के अनुसार तृष्णामूल क्लेश है और जैनों के अनुसार कर्माणुओं से संश्लिष्ट होने से अशुद्धि होती है। इनसे पीड़ित मानव बद्ध अवस्था

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में होता है जो अस्वातंत्र्य युक्त और दु:खमय स्थिति है। ऐसे मानव की वृत्तियाँ त्रुटिपूर्ण होती हैं और उसकी तर्कक्षमता अत्यन्त सीमित होती है क्योंकि बुद्धि शुद्ध नहीं होती। यद्यपि अध्ययन, मनन, व तर्क के द्वारा हम अपनी बुद्धि को प्रशस्त कर सकते हैं और स्मृति को भी तीव्र कर सकते हैं लेकिन जब तक क्लेश रहेंगे हमारी उपलब्धियाँ सीमित ही रहेंगी और बुद्धि विषयनिष्ठ व सत्यपरक नहीं हो पाएगी। हमारी बुद्धि निरन्तर सक्रिय रहती है और यह वितर्क, विचार, आनन्द, और अस्मिता भावों को प्राप्त होती रहती है। क्लिष्ट व अशुद्ध बुद्धि में ये भाव क्षीण व अस्पष्ट रहते हैं लेकिन जब क्लेशों का शनैः शनैः हान होने लगता है तो बुद्धि प्रज्ञा रूप होती जाती है और इसके भाव भी स्पष्ट और तीव्र होते हैं। अतः क्लेशों, तृष्णा, व कर्ममल को नष्ट करना ही योग का मूल प्रयोजन है जिससे बुद्धि प्रज्ञा हो सके और ज्ञाता अपने स्वरूप को उपलब्ध कर सके। अतः एक ऐसे कार्यक्रम पर विचार करने की आवश्यकता है जिसके निरन्तर अभ्यास करने से क्लेशरूपी मल धीरे-धीरे नष्ट हो जाएँ और बुद्धि प्रज्ञारूप होकर अपने भावों में स्पष्ट गति कर सके। प्रज्ञा जब अपनी चरमशुद्धि की अवस्था को प्राप्त होती है तब स्वस्वरूप की स्थायी उपलब्धि होती है जिसे समाधि या कैवल्य या बोध या शिवत्व कहा जाता है। यह एक ऐसी मानसिक अवस्था होती है जिसमें बुद्धि व मन पूर्णतः शान्तभाव को प्राप्त हो सकते हैं निश्चल व पारदर्शी जल की तरह।

३. मानस व बुद्धि की शुद्धि की इस उच्च अवस्था को प्राप्त करने के क्या उपाय हैं? इस प्रश्न का उत्तर खोजने हेतु भिन्न मतानुयायियों ने अनेक शोध व अन्वेषण किए हैं जिनमें संभवतया सर्वाधिक योगदान शैवों का रहा है। यहाँ इस पर पूर्ण मतैक्य है कि उपायों का वैराग्ययुक्त अभ्यास अनिवार्य है क्योंकि लम्बे व अनवरत अभ्यास की निरन्तर प्रक्रिया के बिना किसी भी फल की सिद्धि असंभव है। इन उपायों में तप अर्थात् उपवास, धरती पर सोना, वस्तुओं का कम से कम उपयोग आदि, ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य की रक्षा और इस धातु का अधिकाधिक देह में ही रमाना, स्वाध्याय अर्थात् स्वस्वरूप के कारणों व प्रयोजनों तथा सृष्टि में आत्मा के स्थान आदि विषयों का अध्ययन, चिन्तन व मनन, मन्त्राभ्यास अर्थात् किसी वर्णसंयोजन का मन ही मन में निरन्तर उच्चारण, प्राणायाम, अर्थात् श्वास प्रक्रिया के निरोध के अभ्यास से प्राण वायु का देह में सर्वस्थानों में संचार, आसन अर्थात् देह के व्यायाम जिनमें विभिन्न क्रियाओं और मुद्राओं के अभ्यास से देह को स्वस्थ व शुद्धि प्रक्रिया के अनुकूल बनाना और ध्यान का अभ्यास, आदि कुछ ऐसे उपाय हैं जिनके बारे में भी लगभग सभी मतों में ऐक्य है। लेकिन औषध-प्रयोग जैसे पारद, भंग, चरस, मदिरा, व मांस का प्रयोग; काम शक्ति का संचालन और तदुपरान्त मनोनियन्त्रण, ईश्वर प्रणिधान अर्थात् प्रथमज्ञानदाता के प्रति समर्पणभाव, आदि उपायों के बारे में मतैक्य नहीं है। यद्यपि पतञ्जालि अपने योगसूत्र में औषधप्रयोग द्वारा सिद्धि प्राप्ति का संकेत देते हैं लेकिन इसका सर्वाधिक प्रयोग शैव पद्धति में किया गया है जिसे हठयोग या तंत्रपद्धति कहा जाता है। इसी प्रकार पतञ्जलि ईश्वरप्रणिधान को साधक के आरंभिक अभियान में एक महत्त्वपूर्ण उपाय के रूप में स्वीकार करते हैं।

पतञ्जलिआत्मस्वरूप-उपलब्धि की पद्धति के दो चरण मानते हैं, प्रथम चित्तवृत्ति-निरोध और दूसरी क्लेशहान जो संस्कारनिरोध भी कही जा सकती है। चित्तवृत्तिनिरोध के भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो चरण हैं जिन्हें प्राथमिक अभ्यास, जिसमें प्राणायाम, ईश्वरप्रणिधान, आसनाभ्यास आदि हैं और द्वितीय क्रियायोग, जिसमें तप, स्वाध्याय व ईश्वरप्रणिधान का सम्मिलित प्रयोग होता है, प्रथम उपायों को जारी रखते हुए। इस प्रकार जब क्लेश ढीले हो जाते हैं तथा निरन्तर अभ्यास से धारणा, ध्यान और समाधि की अल्पकालिक क्षमता प्राप्त हो जाती है तो समाधि को अधिक गहन और दीर्घकालिक बनाते हुए चित्तवृत्तियों के पूर्णनिरोध की क्षमता होती है और क्लेश नष्ट हो जाते हैं। तत्पश्चात् निरन्तर अभ्यास से यह समाधि ही संस्कार निरोध भी सम्भव बनाती है। अतः अभ्यस्त और अनुभवी साधक के लिए समाधि की क्षमता, गहनता और दीर्घकालता सर्वोच्च अवस्था को उपलब्ध करने हेतु महत्त्वपूर्ण है।

४. जहाँ पातञ्जलि इस उत्थान-प्रक्रिया को बुद्धि की शुद्धि के या समाधि के वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता चरणों में क्रमशः प्रगति के रूप में देखते हैं जिसके फलस्वरूप चित्त मणिवत् शुद्ध होता है, ज्ञानदीप्ति होती है, व विवेकख्याति होती है, वहाँ शैव इस प्रगति को कुण्डलिनीशक्ति जागरण और उत्थान के रूप में देखते हैं। इसे वे शक्तिचालन व चक्र-भेदन की प्रक्रिया कहते हैं जो सहस्रार चक्र के खुलने में परिणत होती है। ये चक्र देह के भीतर ही शक्तिकेन्द्र हैं जो सम्भवतया विद्युतयुक्त नाड़ी-तन्त्र के केन्द्र हैं जो सामान्यतया पूर्णतः सक्रिय नहीं होते और अभ्यास से पूर्णतः सक्रिय होते हैं। सहस्रार हमारा मस्तिष्क है जो स्नायुतन्त्र का केन्द्र कहा जाता है और आधुनिक शरीरक्रिया विज्ञान के अनुसार जिसका एक तिहाई भाग ही सामान्य जनों में सक्रिय होता है। अतः शक्तिचालन और चक्रभेदन की शैव व्याख्या आधुनिक विज्ञान के लिए अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

आधुनिक शरीर-वैज्ञानिकों ने योगाभ्यास से होने वाले दैहिक परिवर्तनों का अध्ययन किया है। उनके अनुसार शरीरक्रियाओं की क्षमता में महत्त्वपूर्ण वृद्धि होती है, और देह के मल (Toxics) भी नष्ट होते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन, जैसे आक्सीजन की कम मात्रा का उपभोग, रक्तपरिभ्रमण-गति का धीमा होना, रक्त का शुद्ध होना, शरीर की उपचयप्रक्रिया का धीमा होना, मस्तिष्क की सक्रियता का बढ़ जाना और हृदय के कार्य का अधिक सक्षम होने का यन्त्रों के द्वारा अध्ययन किया गया है और वेध द्वारा सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार जागृत और निद्रा की अवस्थाओं का भी मस्तिष्कविद्युतीय परीक्षण यन्त्र से अध्ययन किया गया है। जागृत अवस्था में मानव मस्तिष्क से आल्फा-तरंगें निकलती हैं और निन्द्रावस्था में बीटा-तरंगें निकलती हैं। योगी की आल्फा और बीटा तरंगें अधिक स्पष्ट और नियमित होती हैं। यही नहीं, समाधि की अवस्था में ये आल्फा-तरंगें अत्यन्त संकुचित हो जाती हैं और समाधि जितनी अधिक गहन होगी यह संकुचन भी उतना ही अधिक होगा। इसी प्रकार इस अवस्था में हृदय की विद्युतीय तरंगें भी संकुचित और धीमी गति वाली हो जाती हैं। अतः आधुनिक विज्ञान से समाधि के विभिन्न चरणों का यान्त्रिक वेध के द्वारा तरंगीय वर्गीकरण सम्भव हुआ है और अब मतभेदों की भी परीक्षा की जा सकती है और एक सर्वाधिक सक्षम योगपद्धति की खोज व स्थापना सम्भव हो गई है।

दर्शन विभाग, राज. वि. विद्यालय, जयपुर

□□

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org